International Journal of Applied Research 2016; 2(5): 335-357

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(5): 335-357
www.allresearchjournal.com
Received: 22-03-2016
Accepted: 23-04-2016

मांगे राम
गांव बालासर, तहसील रानिया, जिला–सिरसा।

Correspondence
मांगे राम
गांव बालासर, तहसील रानिया, जिला–सिरसा।

चंद्रलेखा शर्मा कृत 'मेरी प्रिय कहानियां' के सामाजिक आयाम

मांगे राम

प्रस्तावना

वर्तमान समय में सामाजिक संबंधों का आधार अर्थ बन गया है, पहले जहां आपसी संबंधों का निर्धारण नैतिक मूल्यों और मान्यताओं पर टिका होता था उसका स्थान आज अर्थोपार्जन ने ले लिया है। इसलिए हर पहलू पर अर्थ का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अर्थ यूं तो पुरातन काल से ही प्रभावी रहा है, परंतु वर्तमान काल में जीवन का आधार अर्थ बनकर ही रह गया है। निर्धनता अभिशाप होती है। इसलिए मां पुत्री की अन्तरचेतना जागृत करती है। 'उसे याद आया..... 'एक दिन जब वह कॉलेज से एक घंटा देर से आई थी, तो मां ने समझाया था..... बेटी! गरीबों की इज्जत कागज की नाव होती है, जो रबसाती पानी पर भी तैर जाती है। पड़ोसी जब दूसरी लड़कियों की बातें नमक–मिर्च लगाकर उड़ाया करते हैं, तो हमें क्या छोड़ देंगे?' उन्हें तो कोई बहाना चाहिए बात शुरू करने का। फिर, तुम तो जानती ही हो कि पड़ोसी पहले ही खार खाए बैठे हैं, क्योंकि उनकी लड़कियां चार–चार बार फेल होती आईं, वजीफा भी लेती रही हो।' तब उसने समझी हुई बात को दुबारा समझकर गांठ बांध ली थी, पर वही माँ सीमा से कुछ क्यों नहीं कहती?' [1]
प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर का विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ मात्रा में हीन भावना पाई जाती है। यह हीन भावना के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकती है। [2] आर्थिक हीनता के कारण बेरोजगार युवक अपने जीवन को मात्र एक बोझ समझता है। यही स्थिति 'बोझ और बोझ' निबंध के नायक की है यथा–'हर प्रसन्नता स्वप्न बनती जा रही है। लगता है बेकार युवक जिंदगी को बोझ समझ समाप्त करने के अतिरिक्त इस सिफारिशी युग में क्या सोच सकता है।[3]
हीनता की भावना व्यक्ति को समाज में अलग–थलग कर देती है। आर्थिक और पारिवारिक संबंधों का गहरा प्रभाव परिवार के सभी सदस्यों पर पड़ता है। आर्थिक विषमता के कारण पारिवारिक संबंधों में भी कटुता उत्पन्न हो जाती है। यही स्थिति 'बोझ और बोझ' निबंध के नायक की है। सामाजिक परिवर्तन की द्रुत गति समाज को विभिन्न समूहों में बांट देती है और इनमें से प्रत्येक समूह अपने–अपने आदर्शों की कसौटी को परखकर नवीन मूल्यों की स्थापना करता है। समाज का वर्ग विभाजन करने वाली असंगत आर्थिक व्यवस्था पर कवि ने चिंता जताई है संपन्न वर्ग की विकृत मानसिकता का सषक्त चित्रण करती है। आम जन अपने को सारी सुविधाओं और व्यवस्थाओं में कहीं नहीं पाता है– चरित्र–रहित, नाकारा, प्रदर्शन प्रिय जैसे विश्लेषण उसके दिमाग से सदा चिपके रहते हैं। जबकि, निर्धन व्यक्ति जहां तक आंखें जाती हों– तल्ख लोग और बेहाल दुनिया ही दिखाई देती हो तब वह पैरों तले जमीन नहीं पाएगा। ऐसे में बहुत संभव है कि आदमी निठल्लेपन और निर्लिप्तता को ही अपनी नियति मानकर एक दार्शनिक किस्म के सुख में अपने को केंद्रित कर ले। वह कर्म को अपनी अंतिम संभावना मान बैठता है। संपन्न व्यक्ति ने बहुत ही निर्लिप्त तसल्ली से अपने को सारी तकलीफों से अलग कर लिया है। वह सिर्फ, अपने को ही चाहने और अपनी ही चिंता करने की स्वार्थपरता तक पहुंच गया है। सारे अपमान के बोध को बार–बार नजरअंदाज करके धन संग्रह करते रहना, सारी चिंताओं–दुश्चिंताओं को भुलाकर पड़े–पड़े जुगाली करते रहना यथार्थ जीवन–स्थितियों से उसके पलायन को जाहिर करता है। इस विशमता को शीला पाण्डे ने दर्शाया है। विज्ञान की प्रगति और शिक्षा के विकास ने नारी को जागृत किया है। नारी में अपने अधिकारों के प्रति चेतना आ गई है, उसने पुरुष के आर्थिक वर्चस्व को ललकारा है, आर्थिक, सामाजिक, शिक्षा जैसे अनेक क्षेत्रों में पुरुष समाज को कड़ी चुनौती दी है।
आधुनिक नारी नव जागरण के इस युग में प्रभात के आलोक में नयन खोल रही है। जीवन के विविध क्षेत्रों में उसे पुरुषों के समान ही उत्कर्ष तथा विकास के अवसर प्राप्त है। अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा के संपर्क से उसने रूढ़ियों का पुरातन वस्त्र उतार फेंका है। स्वावलम्ब और आत्मसम्मान उसमें प्रमुख है। अपने कर्तव्यों से अधिक अधिकारों के प्रति जागरूक, सचेत और प्रयत्नशील है। [4]

'प्यार का अंत' नामक निबंध में लेखिका ने एक शिक्षित नारी का चित्रण किया है जो कि अब पुरुष के बहलावे में आने वाली नहीं और उसे मुंह तोड़ जवाब देने की क्षमता रखती है। यथा–'वह मुस्कुराहट नहीं रोक पा रही थी, 'कितने स्वार्थी और ढोंगी होते है, पुरुष। शादी किसी से कटेंगे और प्यार का नाटक किसी से। पैसे के अभिमान में मध्य वर्ग की लड़कियां जैसे उनके लिए महज एक खिलौना है। सोचते है उनसे एक बार प्रेम कर आजीवन उनके प्रेम के नाटक का पात्र बनी रहे। [5] आज के सम्य और शिक्षित समाज को अपनी जीवन शैली पर अत्यंत अभिमान है जिस कारण वह अशिक्षत और आधुनिक जीवन शैली से अपरिचित समाज को कुछ समझता ही नहीं और उन्हें अपने मजाक का आधार बनाता है। 'भाग्यचक्र' नामक निबंध में भी कान्त एक गजेटेड ऑफिसर है। पर उसकी पत्नी आधुनिक जीवन शैली से अपरिचि। जिस कारण कान्त को स्थान–स्थान पर अपमानित होना पड़ता है यथा–

'उसके गिरते ही बीस–पच्चीस लोग आसपास इक्ट्ठे हो गए..... 'क्या हुआ, क्या हुआ?' लेकिन जब कारण का पता चला, तो सब मुस्कुराहट अपने अपने रास्ते चल दिए। कांत का चेहरा शर्म से लाल हो गया। [6]

लेखिका ने समाज के मध्यम व उच्च वर्ग को ही केंद्रित किया है। निम्न वर्ग के प्रति प्रतिक्रिया का अभाव है।

'सुंदर और स्मार्ट तो वह भी कम नहीं था, लेकिन पत्नी की बेहूदी हरकतें उसे नर्वस कर रही थीं। बहुत मना करने पर भी वह सोने की चूड़ियां, कंगन, दो अंगुठियां, दो हार पहन आई थी, जबकि वहां बैठी हुई महिलाएं बहुत ही सादा और सुरुचिपूर्ण मेकअप में थीं। गहना तो बहुत कम पहने थी। अम्मा ने भी कितना समझाया था, 'बहू, सफर में गहना नहीं पहनना चाहिए।' पर वह क्यों न पहने? आखि रवह एक गजेटेड ऑफिसर की पत्नी है, यह कोई मामूली बात है? वह यही सब सोचता आगे बढ़ता जा रहा था कि एक वेटर ने पीछे से आते हुए अदब से सिर झुकाकर कहा, 'आइए साहब, उधर सीट खाली है।' [7]

गृहस्थी जीवन की नींव पक्की हो इसके लिए नितांत आवश्यक है कि उसमें सरलता व सहजता विद्यमान हो और गंभीरता का आभाव हो। लेखिका का मत देखिए–

'परम ब्रह्म ने सृष्टि निर्माण के लिए एक–दूसरे के पूरक रूपों की रचना की। पुरुष व नारी। इन्हीं पृथक गुण एवं प्रकृति वाले भिन्न रूपों का मिलन मानव सृष्टि का आधार है। पुरुष कठोरता, सक्रियता, शक्ति एवं शौर्य का परिचायक है, नारी कोमलता, मधुरता एवं सुकुमारता का मूर्त रूप। पुरुष में मस्तिष्क पक्ष की प्रधानता है, कर्मण्यता का प्रवाह, शौर्य का संयोग है और नारी में उसकी निर्ममता, कठोरता, रूक्षता को अपनी स्वभावगत स्निग्धता से मृदुल बनाने की क्षमता विद्यमान है। भारतीय संस्कृति में नारी को स्नेह ममता, वात्सल्य, उत्सर्ग और त्याग के भावगत विशेषताओं के कारण माता, पुत्री, पत्नी और भागिनी के रूप में स्वीकार किया है। [8]

परंतु आज की शिक्षित नारी सिर्फ देना ही नहीं जानती, वह लेना भी जानती है। पहले गृहस्थी जीवन की सफलता के लिए यह माना जाता था कि पत्नी पति को समझे और उसके अनुकूल जीवन यापन करें। पर वर्तमान संदर्भ में यह व्याख्या प्राचीन समय की निबंध बनकर रह गई है। आज यह नितांत आवश्यक है कि गृहस्थी जीवन की सफलता का आधार है–पति और पत्नी दोनों ही एक दूसरे को समझे, न कि केवल पत्नी। दोनों के रिश्ते में सरलता व सहजता न कि गंभीरता। यही तथ्य आलोच्य निबंध संग्रह की 'अभिनय' निबंध में चित्रित किया गया है। यथा–

'मैं आप दोनों की गंभीरता को मिटाना चाहता था। जहां सरलता नहीं, सहजता नहीं, वह गृहस्थी कैसी?' [9] सभी कहानियां भारतीय संस्कृति के रंग मे रंग कर परोसी गयी हैं। शीला पाण्डे के अंतरानुभव, उसका यह सुलगता हुआ चिंतन सांस्कृतिक बोध की उस विशेषज्ञता को उभार सके हैं जो खून में मिले रिश्तों और संस्कारों को जकड़े हुए अनाम मोहों को तोड़ कर एकदम मुक्त तो नहीं हो सकता, लेकिन स्वीकार भी नहीं कर पाता। लेकिन यह सब है कि वह बोध प्रतिकूल समस्त स्थितियों के खिलाफ एक धधकती हुई मनःस्थिति को लगातार जीता है। यही स्वतंत्रता बोध की अहमियत है और यही हमें प्रायः सभी निबंधकारों में मिलती है। आलोच्य कहानियों में संस्कारगत और कुछ अपनी ही दुर्बलताओं के सींखचों में मुक्त होने की आतुरता, विकलता, साथ ही साथ अपनी सीमाओं को निर्मम होकर तोड़ न सकने की विवश तकलीफ के प्रति कहानिकार का आक्रोश है।

भारतीय समाज और परिवेश में संस्कृति से अलग कोई अहमियत और कोई अलग व्यक्तित्व स्वीकृत नहीं है। कहानिकार ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से खंडित सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति चिंता जताई है। भारतीय स्त्री को अपने ही भीतरी संस्कारों और भावुक दुर्बलताओं से बहुत तकलीफदेह मानसिक लड़ाई को मूर्त करते हैं और इस लड़ाई के माध्यम से भारतीय नारी के स्वातंत्र्य–बोध की सीमाओं का बोध कराती हैं। यह सीमाएं निःसंदेह अपनी ही बनाई हुई हैं। लेकिन यह भी सच है कि इस सीमा बोध की जड़े भारतीय परिवेश में और भारतीय जीवन व्यवस्था में है जिसमें सांस्कृति मुक्ति की संभावनाएं बहुत कम हैं। संस्कृति से अलग एक व्यक्ति रूप में बहुत कम स्वीकार किया जाता है। रहन सहन, रीति–रिवाज, संस्कार, धमादि को संस्कृति के अनुरूप चित्रित किया है। उसके विरुद्ध जाते ही व्यवस्था और समाज के तेवर बदल जाते हैं। दूसरे शब्दों में हिप्पोक्रेसी पाखंड और ढोंग आज के आदमी की चेतना के ईमानदार स्तर पर बार–बार हॉट करती है और उससे मुक्ति पाने की बेचैनी और विकलता को कवि के आलम्बन भोगते हैं। उस व्यवस्था पर छिपी हुई चोट करता है, जिसमें आदमी आत्मविश्वास को खोने के लिए विवश है। ह्रयूमिलिएशन जलालत की तीखी और उबलती हुई प्रतिक्रिया में वह आखिर अपने को उस व्यवस्था के सामने झुका हुआ पाता है। बल्कि उसे दुख होता है कि वह अब तक क्यों इस व्यवस्था को खूंखारता को समझ नहीं पाया था।

'एक दिन पड़ोसिन शीला आई थी। उसकी सांस की वह कोई रिश्ते की बहिन लगती थी। युमना ने रानी जब चाय लेकर गई तो उसे कमरे में घुसते–घुसते रुक जाना पड़ा। पड़ोसिन शीला स्वर को कुछ गीला बनाते हुए कह रही थी, 'और तो सब ठीक ही है, लेकिन बच्चों की जिंदगी में जहर घुल गया।' यमुना ने विवशता के स्वर में कहा, 'क्या करूं बहन, रमेश की जिंदगी का भी तो देखना था। मेरा क्या है, आज हूं, कल नहीं। आखिर खाना बनाने को तो कोई चाहिए थी। दान–दहेज तो हमने कभी मांगा ही नहीं। सोचा था, लड़की सीधी–सादी हो, लेकिन क्या पता चलता है देखने–दाखने से। बहिन, मैं तो यह प्रार्थना करती हूं कि भगवान मुझे दस–बारह साल और जिंदगी दे, जिससे बच्चों को किसी लायक बना जाऊं।

उसी समय शीला को रानी की साड़ी का पल्ला दिख गया। वह एकदम बोली, 'आओ, बहू आओ।' उसकी सास जल्दी से आंसू पोंछने का उपक्रम करने लगी। रानी से उस नाट्यपूर्ण कमरे में एक क्षण भी नहीं रुका गया। जल्दी से चाय मेज पर रखकर जब वह जाने लगी, तो शीला ने कहा, 'बहू, बैठो न कुछ देर।' [10]

निश्चित रूप से यह सच है कि नयी पीढ़ी के निबंधकार में इस राजनीतिक आजादी की कोई आंतरिक संगति नहीं है, बाह्य रूप ये वह परेशान ही है– शायद इससे कम परेशान वह कभी भी नहीं होता। वह ज्यादा परेशान भी न होता – यदि वह गुलाम रहती। तब शायद उसकी अनुभूति का, सोचने–समझने का और व्यक्त करने का स्तर कुछ दूसरा होता। यह भी सच है कि गुलामी के दिनों में राष्ट्रीय प्रेम के जो गीत लिखे गये या प्रगतिवाद के नाम पर जो किसान मजदूर की समस्याओं के नारे लगाए गए वह सब एक फंटेस्टिकल मेनियां था। रूढ़िवादी एवं परतंत्र सोच के प्रति शीला पाण्डे ने सर्वत्र आक्रोश जताया है।

आलोच्य निबंधकार ने मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। कहीं परंपरागत मूल्य कभी, प्रगतिशील चेतना कहीं शहीद–नमन तो कहीं अहसास की पीड़ा से जुड़ी मनोवृतियों को मूर्त रूप दिया है। तनाव इच्छाहीनता में बदल जाता है क्योंकि निजी अभिशाप के प्रतिकार का अर्थ होता है। शीला पाण्डे द्वारा एक और अन्तर्द्वन्द्व को बहुत ही संवेदनशील बारीकी और गहरी कलात्मकता के साथ उभारा गया है। शीला पाण्डे मूक है इस चुप के पीछे, इस एकाएक सपाट और तटस्थ बेचैनी भरी मनःस्थिति के पीछे एक मनोविज्ञान है जिसे कवि सिंह की सहभागी मर्मी दृष्टि पकड़ लेती है।

निश्कर्श

अतः इनकी कहानियों' में जो दुनिया सामने आती है उस दुनिया में कहीं दीवारें नहीं है, छत नहीं है– वहां केवल टीसती हुई जिजीविशा है– डूबे और कुंठित आत्मविश्वास हैं और अपनी जड़ें कहीं भी न पाने का भयावहबोध है। इस दुनिया के लोग लेकिन सहज ही विसंगतियों को स्वीकार नहीं कर लेते हैं वे उदास होते हैं, क्रूद होते हैं, आक्रोश व्यक्त करते हैं उत्तेजनाओं में से गुजरते हैं– अपने अन्दर निरंतर एक सुलगती हुई आग महसूस करते हैं और उनकी यह अस्वीकृति ही उनके जिंदा होने को प्रमाणित करती है – यही बेचैनियों कवि की चेतना के असली बिंदु उभारती हैं।

संदर्भ सूचीः

1. चंद्रलेखा शर्मा 'मेरी प्रिय कहानियां' पृ. 13।
2. असामान्य मनोविज्ञान पृ. सं. 116।
3. चंद्रलेखा शर्मा 'मेरी प्रिय कहानियां' पृ. 61।
4. डॉ. उषा पांडेय, 'मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी भावना' पृ. 06।
5. चंद्रलेखा शर्मा 'मेरी प्रिय कहानियां' पृ. 70।
6. चंद्रलेखा शर्मा 'मेरी प्रिय कहानियां' पृ. 56।
7. चंद्रलेखा शर्मा 'मेरी प्रिय कहानियां' पृ. 51।
8. डॉ. उषा पांडेय, 'मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में' नारी भावना' पृ. 13।
9. चंद्रलेखा शर्मा, 'मेरी प्रिय कहानियां' पृ. 74।
10. चंद्रलेखा शर्मा 'मेरी प्रिय कहानी।